रवीन्द्र डी० पण्ड्या

जन्म : 2 फरवरी, 1946

खडगदा, डूंगरपुर (राजस्थान)

Secretary: Vagwar Art Council, Dungarpur (Banswara)
Member : Art Society of India
Member : Board of Art & Craft Education U. P., Agra
Senior Teacher in Drawing : J. M. H. S. S, Khadgada

श्री पण्ड्याजी मुख्यतया इतिहास की अपेक्षा कला से अधिक सम्बन्धित हैं। ऐतिहासिक स्थलों में कला दर्शन करना आपका प्रिय शौक है। अर्थूणा की कई मूर्तियों की रेखात्मक प्रतिकृतियाँ अर्थूणा शोध कार्य के साथ-साथ आपने लगन और साधना से तैयार की हैं।

इतिहास के छात्र न होने पर भी श्री पण्ड्याजी का पुरातत्त्व के प्रति यह प्रयत्न वस्तुतः पर्याप्त गम्भीर एवं इतिहास के छात्रों एवं अन्य सामान्य जनों के लिए भी पर्याप्त उपयोगी है। सदियों से मिट्टी के नीचे दबी सभ्यता के विकीर्ण कणों को एकत्रित करके उसे जगत के सामने प्रस्तुत करना तथा अर्वाचीन मानव को उसकी प्राचीन कलाओं एवं संस्कृति से परिचित करवाना अपने आप में ही एक प्रशंसनीय कार्य है।

अर्थूणा ग्राम

ARTHUNA GRAM : EK PARICHAYA

लेखक
रवीन्द्र डी० पण्ड्या
मेम्बर, बोर्ड ऑफ आर्ट एण्ड क्राफ्ट एज्यूकेशन यू. पी., आगरा

भूमिका
डॉ० नागेन्द्रसिंह
न्यायाधीश, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, हेग (नीदरलैण्ड्स)

प्रस्तावना
डॉ० रघुवीरसिंह

शुभकामना
हरिदेव जोशी
मुख्य-मन्त्री, राजस्थान सरकार

सम्मति
डॉ० बी० एन० शर्मा
राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

वितरक
रिसर्च पब्लिकेशन्स इन सोशल साइंसेज

Sole Distributors
ART CENTRE
Post Box No. 4131,
Navrangpura.
Ahmedabad-380009 (India)

ARTHUNA GRAM EK PARICHAYA
by Ravindra D. Pandya

Rs. 20

PRINTED IN INDIA

Published by College Book Depot, Jaipur
Printed at Hema Printers, Jaipur.

समर्पित

प्रातःस्मरणीय

पूज्य माताजी एवं पिताजी

के

चरणों

में

सादर

डॉ० नागेन्द्रसिंह
[न्यायाधीश, अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, हेग (नीदरलैण्डस्)

प्रस्तुत रचना राजस्थान के दक्षिण-पूर्व भाग में स्थित बागड़ प्रदेश के प्राचीन ऐतिहासिक महत्त्व तथा इस प्रदेश में विकसित विशिष्ठ वास्तु तथा शिल्पकला के केन्द्र अर्थूणा ग्राम के सम्बन्ध में शोध को नई दिशा देने वाला प्रशंसनीय प्रयास है। विशेषकर इस ग्रन्थ के रचयिता श्री रवीन्द्र डी. पण्ड्या एक नवयुवक उदीयमान लेखक हैं। मैंने उनकी रचना को ध्यानपूर्वक देखा है और मैं उनके प्रयास से प्रभावित हुआ हूँ।

लेखक ने बागड़ की प्राचीन संस्कृति के केन्द्र अर्थूणा ग्राम के भग्नावशेषों का सूक्ष्म निरीक्षण कर जिन कलाकृतियों को अपने ग्रन्थ में स्थान देने का निर्णय किया है उन्हें देखकर इस प्रदेश के गौरवशाली भूतकाल का अनुमान लगाया जा सकता है। उस समय अर्थूणा इस प्रदेश का महानगर था तथा परमारवंशीय राजकुल की राजधानी था। उस वंश के राज्यांतर्गत वर्तमान डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा मेवाड़ के दक्षिणी क्षेत्रों के अतिरिक्त मालवा का प्रदेश भी सम्मिलित था। कालान्तर में अर्थूणा की गरिमा विस्मृति के गर्भ में तिरोहित होती गई और आज वहाँ पर पूर्व के इतिहास को साक्षी देने के लिए जो भग्नावशेष दिखाई पड़ते हैं उन्हीं का आधार लेकर आधुनिक शोधकर्त्ताओं को कार्य करना पड़ेगा। श्री पण्ड्या का यह प्रयास इसी दिशा में एक सही कदम है।

मैं आशा करता हूँ कि वर्तमान इतिहासकार उनके ग्रन्थ का स्वागत करेंगे और इस प्रकार इस उदीयमान नवयुवक लेखक को प्रोत्साहन देकर उनके उत्साह में अभिवृद्धि करेंगे।

नागेन्द्रसिंह

प्रस्तावना

मालवा प्रदेश के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर स्थित बागड़ क्षेत्र पर बहुत काल तक मालवा के परमार राजाओं का आधिपत्य ही नहीं रहा, किन्तु उनकी ही एक छोटी शाखा भी उनके सामन्तों के रूप में वहाँ शासन करती रही थी। बागड़ क्षेत्र के इन परमार शासकों की राजधानी, अर्थूणा (उत्थणक), उस समय एक महत्त्वपूर्ण विस्तृत नगरी थी। परमारों के इस बागड़ क्षेत्रीय राजघराने के पतन के साथ ही उनकी राजधानी का राजनैतिक महत्त्व भी समाप्त हो गया। तदनन्तर आक्रमणकारियों ने वहाँ के मन्दिरों और मूर्तियों को ध्वस्त कर दिया। उस प्राचीन राजधानी के कई-एक महत्त्वपूर्ण ध्वंसावशेषों पर निरंतर मिट्टी चढ़ती रही, जिससे सैकड़ों वर्षों में वे टीलों में परिणत हो गए थे। परन्तु यह नगरी इतने विस्तृत क्षेत्र में बसी हुई थी और उसके ध्वंसावशेष इतने अधिक बिखरे हुए थे कि वे सब ही धरती की गोद में लुप्त नहीं हो पाए। अतएव अपने ज्ञात महत्त्वपूर्ण विगत इतिहास के कारण उस समूचे प्रसार-क्षेत्र को राष्ट्रीय महत्त्व का घोषित कर भारत शासन के केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग ने उसे अपने अधिकार में ले लिया तथा उसकी सुरक्षा आदि की व्यवस्था भी कर दी।

यह बड़े हर्ष की बात है कि इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रसार-क्षेत्र के तीन विशिष्ट टीलों की खुदाई का काम भारत शासन के केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग ने अक्तूबर, 1970 ई. में प्रारम्भ कर उनमें से दो शिव-मन्दिर तथा एक जैन मन्दिर के ध्वंसावशेषों को निकाला। अब उनके पुनर्निर्माण का काम चल रहा है।

इस प्रकार किए गए अपने उत्खनन-कार्यों का विवरण और उनके फलस्वरूप विशिष्ट उपलब्धियों आदि की पूरी जानकारी कालान्तर में भारतीय केन्द्रीय पुरातत्त्व-विभाग प्रकाशित करता है। परन्तु इन विवरणों के प्रकाशन में बहुत देरी लग जाती है, जिससे उन बातों की सही जानकारी उस स्थान अथवा क्षेत्र विशेष के संशोधकों आदि को भी समय पर नहीं मिल पाती। किन्तु अर्थूणा में हुए उत्खनन कार्यों के महत्त्वपूर्ण परिणामों की जानकारी को जनसाधारण को सुलभ करने के लिए बागड़ क्षेत्र का ही एक सपूत सोत्साह प्रयत्नशील हुआ है, यह देखकर विशेष हर्ष होता है। श्री रवीन्द्र देवशंकर पण्ड्या ने 'अर्थूणा ग्राम—एक परिचय' पुस्तिका के

प्रकाशन की योजना बना कर एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया है।

अपनी इस सचित्र पुस्तिका में श्री रवीन्द्र पण्ड्या ने उस प्रसार-क्षेत्र का तत्कालीन इतिहास तथा वहाँ के इस उत्खनन-कार्य का संक्षिप्त विवरण देने के बाद अर्थूणा ग्राम के पुरातत्त्वीय ध्वंसावशेषों और वहाँ से प्राप्त पुरानी-नई सब ही सुन्दर मूर्तियों आदि के अनेकानेक चित्र देकर उनके संक्षिप्त विवरण भी दे दिए हैं, जिससे यह पुस्तिका इतिहास तथा पुरातत्त्व के संशोधकों के साथ ही मालवा के तत्कालीन शिल्प, मूर्ति-कला व संस्कृति आदि के अध्येताओं के लिए भी वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और उपयोगी बन गई है। श्री रवीन्द्र पण्ड्या स्वय अच्छे चित्रकार और भावुक सुकलाकार हैं, एवं उन्होंने इस पुस्तिका में प्रकाशनार्थ अर्थूणा से प्राप्त कला के सुन्दरतम उदाहरणों को ही चुन कर उनके फोटो-चित्र तैयार करवाए हैं। भविष्य में वहाँ कुछ और अत्यावश्यक उत्खनन कार्य की योजना बनाने वालों और संशोधकों को वह विशेषरूपेण लाभप्रद होगा।

ऐसी सुन्दर उपयोगी तथा सुचारू प्रामाणिक विवरणात्मक पुस्तिका के लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं। मेरा विश्वास है कि इस पुस्तिका के प्रसार से अधिकाधिक संशोधक और दर्शक-यात्री अर्थूणा जाने को प्रेरित होंगे।

समूचे राजस्थान में ऐसे अनेकों ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण दर्शनीय स्थान हैं, जिन पर ऐसी विवरणात्मक पुस्तिकाएँ तैयार की जा सकती हैं। अतः मेरा आग्रह होगा कि राजस्थान शासन इस ओर विशेष ध्यान देवे तथा श्री रवीन्द्र पण्ड्या द्वारा प्रस्तुत इस अनोखे उदाहरण का अनुकरण करे।

'रघुबीर निवास'
सीतामऊ (मालवा)

रघुबीरसिंह

मुख्य मन्त्री, राजस्थान,
जयपुर

प्रिय बन्धु,

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप दक्षिणी राजस्थान का ऐतिहासिक 'अर्थूणा ग्राम—एक परिचय' पुस्तिका का प्रकाशन कर रहे हैं। यह गाँव बाँसवाड़ा जिले में ऐतिहासिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला के लिए यह स्थान प्रसिद्ध रहा है। मैं आपके प्रकाशन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

आपका
हरिदेव जोशी

Dr. H. R Gaudani
Member, Gujrat State Archaeological Board,
Muscum Committee, AHM EDABAD.

भाई श्री रवीन्द्र डी. पण्ड्या द्वारा लिखित 'अर्थूणा ग्राम—एक परिचय' पुस्तक की मूल प्रति का अवलोकन किया। यह पुस्तक शिल्प स्थापत्य कला के प्रेमियों के लिए बहुत उपयोगी एवं सहायक सिद्ध होगी। राजस्थान के डूंगरपुर जिले के अन्तिम किनारे पर पड़े हुए प्राचीन अर्थूणा नगरी के अवशेष कितने शिल्प समृद्ध हैं उसका सम्पूर्ण ख्याल आ सकता है। इस पुस्तक को लिखने में लेखक ने बहुत परिश्रम किया है, यह परिश्रम सामान्य आर्थिक परिस्थिति वाले एक शिक्षा-प्रेमी शिक्षक के लिए मुश्किल होते हुए अनमोल है। इनके आगे के लेखन-कार्य में सफलता की कामना करता हूँ।

एच. आर. गोदानी

DR. B N. SHARMA
M A, Ph D, D. LITT.
KEEPER
NATIONAL MUSEUM
JANPATH, NEW DELHI-1

श्री रवीन्द्र डी. पण्ड्या की पुस्तक 'अर्थूणा ग्राम-एक परिचय' प्राप्त हुई। इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने अर्थूणा, जिसका प्राचीन नाम स्थानीय अभिलेखों में 'अत्थूणक' मिलता है, के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व कला का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। अर्थूणा के इतिहास एवं पुरातत्व महत्त्व को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय म. म. डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को है, जिन्होंने इस नगर का महत्त्वपूर्ण वर्णन अपने अमूल्य ग्रन्थ 'बाँसवाड़ा राज्य का इतिहास' में किया है।

अर्थूणा के प्राचीन इतिहास के बारे में विशेष सामग्री प्राप्त नहीं होती परन्तु मध्यकाल लगभग 9वीं शती से इसकी गणना राजस्थान के प्रमुख नगरों में होने लगी थी। इसी युग में बागड़ के परमार शासकों की राजधानी बनने के पश्चात् इसकी महत्ता और अधिक बढ़ गई थी और उनके समय के बने अनेक भवन एवं देवालय आज भी उस वैभवशाली नगर की गौरव-गाथा बताते हैं। मध्य युग में शैव और जैन धर्म का विशेष प्रभाव होने के कारण यहाँ अनेक शैव व जैन मन्दिर बने जिनमें अधिकतर अब खण्डित दशा में हैं। इनके अतिरिक्त परमारयुगीन लेख युक्त पवनपुत्र हनुमान की भी एक सुन्दर मूर्ति है जैसी कि खजुराहो, बिल्हरी आदि स्थानों से मिली हैं।

श्री पण्ड्या की प्रस्तुत पुस्तक राजस्थान और विशेषकर परमारों के इतिहास, उनकी कला एवं संस्कृति में रखने वाले विद्वानों एवं विद्यार्थियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। उनके इस सफल प्रयास को ध्यान में रखकर अर्थूणा के स्थापत्य एवं मूर्तिकला पर भी एक अच्छा-सा ग्रन्थ तैयार किया जा सकता है। आशा है श्री पण्ड्या अपना लेखन-कार्य जारी रखेंगे और भविष्य में राजस्थान के अन्य प्राचीन नगर जैसे आबानेरी, आसिया, झालरापाटन, नीलकण्ठ भीनमाल, किराडू आदि पर भी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित कर सभी को लाभान्वित करेंगे।

ब्रजेन्द्र नाथ शर्मा

नाथूराम भाई

सदस्य, राजस्थान विधान सभा

भाई श्री रवीन्द्र,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आपकी 'अर्थूणा ग्राम—एक परिचय' नामक पुस्तक प्रकाशित होने जा रही है। मैंने अर्थूणा के पुरातात्विक खण्डहरों को कई बार निकट से देखा है। इस पुस्तक द्वारा जो ऐतिहासिक रहस्योद्घाटन किया जा रहा है, यह एक प्रशंसनीय कार्य है। अर्थूणा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का एक विकसित परमारकालीन राजधानी रही है। मेरी दृष्टि में यह पुस्तक इतिहास एवं पुरातत्त्व के शोधकर्त्ताओं के लिए उपादेय सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है। प्रभु इस प्रकाशन में सफलता प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

आपका
नाथूराम

★ ★ ★

श्री रवीन्द्र डी. पण्ड्या को मैं बचपन से जानता हूँ। बड़ी लगन वाले प्रतिभाशाली नवयुवक हैं। उनके बड़े श्रम से प्राचीन परमारयुगीन नगरी अर्थूणा के गर्भ में गड़ी हुई ऐतिहासिक कला-कृतियों को अपनी पुस्तक के द्वारा कला-प्रेमी जगत के सामने लाकर बड़ी सेवा की है। अर्थूणा एक तरफ आवागमन से दूर स्थान है वहाँ से इस कलात्मक वैभव को श्री पण्ड्या इस पुस्तक द्वारा प्रकाश में ला रहे हैं। वे बधाई के पात्र हैं।

जयपुर

शिवशंकर

दो-शब्द

प्रस्तुत पुस्तिका के माध्यम से मैं आपको उस पुण्य पवित्र भूमि और पुरातात्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थली से परिचित कराना चाहता हूँ, जहाँ असंख्य अमूल्य प्रस्तर प्रतिमाएँ आपकी निरन्तर प्रतीक्षा कर रही हैं। मौन निमन्त्रण दे रही हैं, ये आकृतियाँ पुरातत्वविदों और इतिहासज्ञों को गवेषणा के लिए व साहित्यकारों को साहित्य निर्माण के लिए, तूलिकाकार को अपना एवं अपने समाज का दर्द चित्रों में उतार कर विश्व समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए तथा पर्यटकों को यहाँ का पर्यटन कर समृद्धि को अपने चर्मचक्षुओं के माध्यम से अन्तस् में उतारने के लिए; यह सौभाग्यशाली स्थान है—'अर्थूणा ग्राम'। जहाँ प्रकृति की विस्तृत लीलामयी स्थली में असंख्य प्रस्तर प्रतिमाएँ सैकड़ों वर्षों से प्रगाढ़ निद्रा का आनन्द ले रही हैं।

राजस्थान के दक्षिणांचल में गहन गर्तों और उत्तुङ्ग शैल-शिखरों से घिरा प्रदेश है—बाँसवाड़ा। उसी प्रदेश के एक कोने में स्थित है—'अर्थूणा ग्राम'। अतीत में यह ग्राम विशाल और गगनचुम्बी अट्टालिकाओं वाला एक वैभवशाली नगर था। काल के कराल चक्र के फेर में आकर नष्ट हुए इस ग्राम के खण्डहरों का वैभव संरक्षण पाने के लिए पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग, भारत सरकार की शरण में आ चुका है, परन्तु उस पर जो विस्मृति की धूल जमी है उसे झाड़-पौंछ कर स्वयं को कृतार्थ करने हेतु साहित्यकारों, इतिहासकारों, पुरातत्वज्ञों एवं चित्रकारों को एक बार अवश्य यहाँ का पर्यटन करना चाहिए।

महान् इतिहासकार स्व० श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इस स्थान की दो बार यात्रा की। यहाँ से 11वीं एवं 12वीं शताब्दी के अनेक शिलाभिलेखों की अनुलिपियाँ प्राप्त की और बागड़-परमारों की राजधानी इस अर्थूणा नगर के उज्ज्वल इतिहास को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत कर विद्वान अन्वेषकों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। तदुपरान्त अनेक शोध-कर्मी विद्वानों ने लेखादि लिखकर इस नगर के अतीत की कीर्तिगाथा गाई है।

भारतीय स्थापत्यकला विश्व में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाए हुए है। स्थापत्यकला के अन्तर्गत वास्तुकला मुख्यतः विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी रही है। ऋषि-मुनियों और विद्वानों द्वारा चर्चित हमारा यह देश भौतिक सुख-सुविधाओं से अछूता भले ही रह गया हो, पर धर्मप्राण देश होने के कारण वास्तुकला के भग्नावशेष आज भी हमारी संस्कृति को निःशेष होने से बचाए हुए हैं।

प्रस्तर पर उत्कीर्ण कलाकृतियों का सम्बन्ध इतिहासकार, कलाकार एवं साहित्यकार के अध्ययन की वस्तु तो है ही, पर देश की प्रत्येक पीढ़ी के व्यक्तियों के ज्ञानार्जन में भी यह अध्ययन सहायक होता है। उन महान् शिल्प कलाकारों के प्रति क्या हमारा कोई दायित्व नहीं है, जिन्होंने अनघड़ प्रस्तरों में आकृति प्रदान कर उनमें प्राण फूँका। ये शिल्पी मात्र सामान्य कलाकार ही नहीं थे, कर्मयोगी भी थे। थोड़ी-सी ख्याति के लिए झूठ-सच, उचित-अनुचित सभी प्रकार के विधान को अपनाने वाले न होकर वज्राश्मों में जीवन का स्पन्दन भरने वाले इन शिल्पकारों ने अपनी कलाकृतियों पर अपने हस्ताक्षर छोड़ जाने की बात तक नहीं सोची। अतीत के इन अज्ञात शिल्पियों के विषय में जानकारी प्राप्त करना और उन्हें श्रद्धा सुमन चढ़ाना हमारा पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है।

लगभग एक हजार वर्ष पूर्व विश्वकर्मा शिल्पकार अपनी छेनी और हथोड़ी के माध्यम से निर्जीव पाषाण को विभिन्न प्रकार की अलौकिक आकृतियाँ प्रदान कर उनमें प्राण फूँकने का प्रयत्न कर रहा था। सुहावनी संध्या के आगमन के साथ-साथ सान्ध्यवेला में अस्तंगत भगवान भास्कर की रश्मियों को वस्त्राभूषणों से अलंकृत ये पाषाणी मूर्तियाँ, विदाई देने के लिए तत्पर हो जाती रही होंगी।

लता-गुल्मों एवं तरूराजियों में सुशोभित सुपर्ण पक्षियों की चहचहाहट के बढ़ने के साथ-साथ सूर्य भगवान जब पर्वत शृंखलाओं के पीछे अस्त होता रहा होगा, तब शिल्पकार दिन भर की कठोर साधना से विरत होकर पहाड़ियों के मध्य स्थित विशाल सरोवर के समीप आम्र एवं आसापाला के वृक्षों की छाया में बैठकर सुन्दर दृश्यों का अवलोकन करते हुए थकान मिटाते होंगे। अपनी कठिनाइयाँ, अपनी नवीन उपलब्धियाँ,

अपनी आशाएँ एक दूसरे को बताते रहे होंगे । कोई भगवान शंकर के ताण्डव नृत्य के विषय में अपने साथियों से विचार-विमर्श करता होगा, तो कोई महावीर के जीवन पर प्रकाश डालता होगा, कोई पाषाणों में अलंकरण के समय अनुभव के आधार पर उठ खड़ी हुई समस्या को सुलझाने हेतु सुझाव एवं मार्गदर्शन चाहता होगा, तो कोई गगनचुम्बी विशाल मन्दिरों की रूपरेखा एवं प्लेटफार्म बनाने की योजना तैयार करता होगा । इस बीच मुख्य शिल्पकला निर्देशक अपने मुख पर सौम्य स्मिति लिए शिष्य वर्ग के मध्य पहुँच कर उनकी समस्याएँ एवं योजना सुनते होंगे, अनेक अनुभवों के आधार पर, समस्याओं को हल करते हुए आवश्यक मार्गदर्शन, सुझाव शिल्पकारों को देते होंगे, और निशादेवी के आगमन पर दिनभर के थके-माँदे सो जाते होंगे । प्रातःकाल पुनः विविध प्रकार के पक्षियों के मधुर कलरव के मध्य कला की साधना से पूर्ण जीवन-क्रम प्रारम्भ हो जाता रहा होगा । इन अज्ञात शिल्पकारों को, जिन्होंने प्रस्तरों को काट-छाँट कर भाव-पूर्ण प्रतिमाओं को जन्म दिया, मेरी श्रद्धा की सुमनाञ्जलि समर्पित है ।

श्री निदेशक महोदय, भारतीय पुरातत्व संग्रहालय नई-दिल्ली का सदैव कृतज्ञ रहूँगा, जिनकी वैधानिक स्वीकृति से 'अर्थूणा' के इस कार्य को निरन्तर गति दे सका । डॉ० श्री नागेन्द्र सिंह जी आई०सी०एस० न्यायाधीश, इन्टरनेशनल कोर्ट ऑफ जस्टिस, हेग (भूतपूर्व निजी सचिव, महामहिम राष्ट्रपतिजी) के प्रति अपनी असीम निष्ठा एवं कृतज्ञता ज्ञापन करना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ जिनका आरम्भ से अन्त तक पूर्ण सहयोग एवं मार्गदर्शन रहा है । इन्होंने अपने सर्वथा व्यस्त कार्यक्रम में भी मेरे कार्य हेतु जो तत्परता दिखाई है इसके लिए किन्हीं सीमित शब्दों द्वारा आभार प्रदर्शन करना मेरी क्षमता के बाहर की बात है । यह सर्वथा उनकी महान् प्रेरणा का ही परिणाम है कि मैं इस कार्य में उपस्थित विषमताओं को पार कर सका ।

श्री जी. क्यू. शेख, सी. ए. बड़ौदा, उच्चपदाधिकारीगण, पुरातत्व विभाग, वेस्टर्न सर्किल बड़ौदा, श्री वी. के. पी. नायर तथा पं. श्री करुणा शंकर जी, बाँसवाड़ा, कनु.एन. सौनी परिवार पाटण, गुजरात एवं गोवर्द्धन विद्या-बिहार खडगदा के अधिकारीगण का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग मुझे हर कदम पर मिलता रहा है, इसके लिए मैं उन सबके प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ ।

डॉ. श्री ब्रजमोहन जावलिया पी-एच. डी. अधीक्षक प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान उदयपुर के प्रति श्रद्धाभावाँञ्जलि सादर साभार समर्पित है जिनके स्नेहाशीर्वाद का यह सब सुफल है। श्री जावलिया द्वारा निरन्तर मात्र प्रेरणा, प्रोत्साहन और मार्गदर्शन ही नहीं मिला है, अपितु पाण्डुलिपि तैयार करने में भी पूरा योगदान रहा है। ऐसे प्राच्यविद्याविदों के प्रति जितनी कृतज्ञता प्रदर्शित की जाए कम ही है। प्राच्यविद्याविदों के महान् त्याग एवं तपस्या का ही परिणाम है कि आज भी हमें भारतीय संस्कृति की उलझी-ग्रन्थियों को उद्घाटित करने का स्वर्णावसर प्राप्त है।

श्रीयुत् डॉ. हरिलाल आर. गौदानी, अहमदाबाद को विस्मृत करना अव्यावहारिक होगा। इस पुस्तिका को मूर्तरूप देने में आपका अत्यधिक सहयोग, सुझाव एवं मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है। मूर्तियों एवं शिलाभिलेखों के छाया-चित्र आपने ही तैयार कर मुझे दिए हैं।

श्रीयुत पी. सी. जैन का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन का कार्यभार सम्भाल कर इसे मूर्तरूप देने में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है, जिससे यह पुस्तक सुन्दर बन सकी है।

परमपूज्य पिताजी एवं आदरणीय बड़े भाई श्री नरहरि डी. पण्ड्या प्राध्यापक, गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कॉलेज, उदयपुर के अहर्निशपूर्ण प्रोत्साहन, मार्गदर्शन एवं शुभाशीर्वाद से मैं जो कुछ कर सका, यह आपके समक्ष प्रस्तुत है।

अन्त में, विनम्र किन्तु दृढ़ शब्दों में यही निवेदन करना चाहता हूँ कि मेरी यह पुस्तिका पुरातत्वविदों, शिल्पकारों एवं शोधकर्त्ताओं के लिए लेशमात्र भी उपयोगी सिद्ध हुई तो मैं अपने श्रम को सफल समझूँगा। विद्वानों से प्रार्थना है कि मुझे त्रुटियों से बराबर अवगत कराएँगे तो मैं अग्रिम संस्करण में सधार कर सकूँगा।

"गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥"

विदुषामनुचरः
रवीन्द्र डी. पण्ड्या

अनुक्रमणिका

I

अर्थूणा

भौगोलिक स्थिति एवं इतिहास

अर्थूणा जैसे ऐतिहासिक स्थल को अपने आँचल में सँजोए, जो गर्व की अनुभूति कराती है, उस बाँसवाड़ा की भूमि को हमें अवश्य दृष्टिगत रखना चाहिए।

भौगोलिक स्थिति

बाँसवाड़ा 23°30′ से 23°55′ उत्तरी अक्षांश तथा 73°58′ से 74°47′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। यह क्षेत्र कर्क रेखा के समीप है अतः गर्मी के मौसम में अधिक गर्मी अपेक्षित ही है। गर्मियों का औसत तापक्रम 90° है और सर्दियों में 60° रहता है।

बाँसवाड़ा के उत्तरी पड़ौसी हैं उदयपुर और डूंगरपुर जिले, तो दक्षिण में गुजरात का पंचमहाल और मध्य प्रदेश के झाबुआ जिलों से इसकी सीमाएँ मिलती हैं। इसके पूर्व में मध्य प्रदेश का नजदीकी शहर रतलाम और उत्तर राजस्थान का तीर्थ चित्तौड़ है। इस प्रकार सम्पूर्ण बाँसवाड़ा का क्षेत्रफल 1956 वर्ग मील है।

यहाँ की अधिकाँश आबादी आदिवासियों की है। अरावली की पर्वत-श्रेणियाँ चित्तौड़ की ओर से अग्रसर होती हुई कुशलगढ़ तक पहुँची हैं, और इन्हीं पर्वत-मालाओं के बीच स्थित है खुला उपजाऊ पठारी प्रदेश। साथ ही इस क्षेत्र को प्रकृति से वरदान के रूप में माही नदी प्राप्त हुई जो मध्य प्रदेश के अमझरा की पहाड़ियों से निकल कर डूंगरपुर-बाँसवाड़ा की सीमा-रेखा निर्धारित करती है, और पूरे 100 मील तक सम्पर्क सूत्र बनाए रख कर गुजरात राज्य को लाभान्वित करती हुई खम्भात की खाड़ी में मिलती है।

यहाँ की भाषा हिन्दी है और जन सामान्य की बोली 'बागड़ी' है। बागड़ शब्द का तात्पर्य है बहूगर्त अर्थात् बहुत से गड्डों वाला प्रदेश या जंगली

भूमि। इसी प्रकार कच्छ में भी एक ऐसा स्थान है जो बागड़ के नाम से जाना जाता है।

ऐतिहासिक ग्राम अर्थूणा का स्थानीय जनता के लिए धार्मिक महत्त्व है।

अर्थूणा बाँसवाड़ा से लगभग 40 मील पश्चिम में 23°30′ उत्तर और 74° पूर्व में स्थित है। बाँसवाड़ा से अर्थूणा तक की विस्तृत पट्टी में तलवाड़ा, पाणाहेड़ा (पाण्हेड़ा), गढ़ी, बोरी, आँजना आदि के प्राचीन मन्दिरों के अवशेष इसके अतीत की समृद्धि का दर्शन कराते हैं। अर्थूणा अतीत में अरावली की छोटी-छोटी पर्वत-मालाओं के मध्य 4 वर्गमील में फैला हुआ था जिसके भग्नावशेष विस्मृति की धूल में दबे आज तक कराहते रहे हैं। इन खण्डहरों के मध्य में 'गमेला' नाम का विशाल जलाशय स्थित है। इस जलाशय के चारों ओर मूर्तिकला के सुन्दर नमूनों को समेटे 20–25 मन्दिर स्थित हैं। इन्हीं में एक प्राचीन विशाल शिव मन्दिर भी है।

अर्थूणा का इतिहास

बागड़ के परमार मालवा के परमार वंशी राजा उपेन्द्र के छोटे (दूसरे) पुत्र और धार के राजा वैरीसिंह के छोटे भाई डंबरसिंह के वंशज थे। डंबरसिंह ने नवीं शती ईस्वी में बागड़ में अपने राज्य की स्थापना की थी। उनके अधिकार में बागड़ तथा छप्पन का प्रदेश था जिनकी राजधानी अर्थूणक थी।

सम्भव है कि डंबरसिंह को बागड़ का इलाका जागीर में मिला हो। उसका उत्तराधिकारी धनिक हुआ जिसने उज्जैन में महाकाल के मन्दिर के समीप धनेश्वर का देवालय बनवाया।[1] धनिक के पीछे उसका भतीजा चच्च हुआ।

बागड़ के कतिपय राजाओं ने अपने स्वामी धार के राजाओं की ओर से युद्ध में भी भाग लिया। मालवा के राजा श्री हर्ष (सीयक दूसरा) ने कर्नाटक के राठौड़ राजा खोटिक देव पर चढ़ाई की, उस समय चच्च (श्री हर्ष) उसकी ओर से लड़ता हुआ मारा गया।

चच्च के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी कंकदेव ने नर्मदा के किनारे खलिघट्ट के युद्ध में खोटिग की सेना को परास्त किया। कंकदेव इस युद्ध

1. एपिग्राफिया इंडिका—I, पृष्ठ–43.

में हाथी पर सवार होकर लड़ता हुआ मारा गया।[1] आगे बढ़कर मान्य खेट (मालखेड़) नगर को, जो राष्ट्रकूटों की राजधानी थी, वि. सं. 1029 (ई. सं. 972) में लूटा।[2] कंकदेव के चंडप व चंडप के सत्यराज नामक पुत्र हुआ। सत्यराज का वैभव सुप्रसिद्ध राजा भोज ने बढ़ाया। वह भोज की ओर से गुजरात के चौलुक्यों से लड़ा था। उसकी स्त्री राजश्री चौहान वंश की थी। सत्यराज के लिंबराज और मण्डलीक नामक दो पुत्र थे। सत्यराज के बाद लिंबराज उसका उत्तराधिकारी हुआ, उसके पीछे उसका छोटा भाई मंडलीक (मंडन देव) (1059 ई०) हुआ जिसे अर्थूणा शिलालेख में मांडलीक भी कहा गया है, बागड़ का स्वामी बना। वह मालवे के परमार राजा भोज और उसके उत्तराधिकारी (पुत्र) जयसिंह (प्रथम) का सामन्त रहा। उसने प्रबल सेनापति कन्ह को पकड़ कर घोड़ों और हाथियों सहित जयसिंह को सुपुर्द किया।[3] यह पता नहीं चलता कन्ह किसकी ओर से लड़ रहा था। वि. सं. 1116 (ई.सं. 1059) में उसने पाणाहेड़ा गाँव (बाँसवाड़ा जिला) में अपने नाम से मंडलेश्वर का मन्दिर बनवाया। उसके उपरान्त उसका पुत्र चामुण्ड राज शासक बना। संवत् 1237 वि. के एक शिलालेख से पता चलता है कि उसने संवत् 1136 (ई. सं. 1079) में अर्थूणा नगर (बाँसवाड़ा जिला) में अपने पिता मंडलीक के निर्मित मंडलेश (मंडलेश्वर) विशाल शिवालय का निर्माण करवाया। उसने सिन्धुराज को भी पराजित किया। यह सिन्धुराज कहाँ का था और किस वंश का था इसका पता नहीं चलता। उसके समय के चार शिलालेख वि.सं. 1136 फाल्गुन सुदी 7 (ई.सं. 1080, ता० 31 जनवरी) रविवार, आषाढ़ वदी वि.सं. 1157 (चैतादि 1158) अमाँत चैत (पूर्णिमांत वैशाख) ई. सं. 1102 के मिले हैं। मंडनदेव के उपरान्त उसका पुत्र विजयराज उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके (संधिविग्रहिक) युद्ध और अमन विभाग का मन्त्री कायस्थ जाति के राजपाल का पुत्र वामन था। उसके समय के दो शिलालेख वि. सं. 1165 फाल्गुन सुदी 2 ई. सं. 1109 ता. 4 फरवरी, गुरुवार और वि. सं. 1136 वैशाख सुदी 3 (ई. सं. 1109 ता. 5 अप्रेल, सोमवार) के मिले हैं। उसके पीछे किसी राजा का शिलालेख न मिलने से उसके उत्तराधिकारियों के नामों का पता नहीं चलता।

1. ARRM. A--1951, No. 1, p. 2.
2. एपिग्राफिया इंडिका, पृष्ठ–43.
3. ARRM. A—1951, No. 1, p. 2.

सं. 1237 के पूर्वोक्त शिलालेख में परमार राजा के एक अधिकारी के तीन पुत्रों आशदेव, भविष्यराज और अनन्तपाल का नामोल्लेख हुआ है। अनन्तपाल ने किसी शिव मन्दिर का निर्माण करवाया था। 1236 वि० (1178 ई०) से पूर्व बागड़ पर मेवाड़ के गुहिलों का अधिकार था। जालौर के चौहान राजा कीर्तिपाल तथा गुजरात के चौलुक्यों ने जब समरसिंह को चित्तौड़ छोड़ने के लिए बाध्य किया, तो उसने बागड़ प्रदेश में आश्रय ग्रहण किया। उसने यहाँ बड़ौदा को अपनी राजधानी बनाकर नवीन राज्य की स्थापना की। उसके एक वंशज देवपाल देव के विषय में कहा जाता है कि उसने सं. 1306 (सन् 1249ई०) के उपरान्त परमारों से छीन कर अर्थूणा के समीप गलिया कोट पर अपना अधिकार जमा लिया।[1] चीरवा के सं. 1330 वि. के शिलालेख[2] से पता चलता है कि जयसिंह के एक राज्याधिकारी क्षेम के पुत्र मदन ने जैसल की ओर से अर्थूणाक के रणक्षेत्र में पंचाल गुडिक जैत्रमल से युद्ध किया था। अर्थूणाक से अर्थ इसी अर्थूणा से लिया गया है, जो बागड़ की राजधानी था। जैसल से तात्पर्य मेवाड़ के गुहिल राजा जयसिंह से ही प्रतीत होता है, जो जैत्रसिंह के नाम से भी प्रसिद्ध था। जैत्रमल से अर्थ मालवा के परमार राजा जयतुगंदेव से प्रतीत होता है।

गेनोदा ठिकाने के सामन्त किशनसिंह को उसकी अच्छी सेवाओं के बदले जगमल को पुरस्कार स्वरूप अर्थूणा मिला था। रावल उदयसिंह की सं. 1584 वि. में खानवा के युद्ध में मृत्यु के उपरान्त किशनसिंह ने जगमल को उसके बड़े भाई पृथ्वीराज के विरुद्ध उत्तराधिकार के युद्ध में सहायता दी थी। परन्तु कुछ समय बाद अर्थूणा जब्त कर लिया गया था।

मेवाड़ के महाराणा जगत-सिंह ने जब (सन् 1635) सं. 1692 में बांसवाड़ा पर आक्रमण किया, तो किशनसिंह का प्रपौत्र भीमसिंह बहादुरी से रणस्थली में युद्ध करता हुआ मारा गया। भीमसिंह की अद्वितीय सेवाओं को सम्मान देते हुए महारावल समरसिंह ने अर्थूणा ग्राम स्थायी रूप से उसके पुत्र जसकरण को दे दिया।[3]

---

1. राजपूताना गजेटियर—II ए, पृ. 132.
2. एपिग्राफिया इंडिका–I, पृ. 282.
3. BRKI, p. 223.

2

अर्थूणा के देव मन्दिर और उनका शिल्प सौन्दर्य

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि यह नगर ग्यारहवीं एवं बारहवीं शती में बाँगड़ के परमार राजाओं की राजधानी था। ये परमार राजा धार के राजाओं के सामन्त थे। ये शैव धर्मावलम्बी थे। इनके शासन में शैवों ने ही नहीं हिन्दू धर्म के अन्य सम्प्रदायों और जैन धर्म तक ने पर्याप्त उन्नति की। वर्तमान कस्बा प्राचीन नगर के भग्नावशेष के पास नया बसा हुआ है। प्राचीन नगर के इन खण्डहरों में 11 वीं एवं 12 वीं शती के लगभग के हिन्दू और जैन धर्म के विशाल मन्दिरों के अवशेष विद्यमान हैं, जिनमें तक्षण कला के अत्यन्त सुन्दर नमूने अब भी सुरक्षित हैं। इनसे इस नगर के विस्तार और अमित समृद्धि का पता लगता है। इन मन्दिरों में सर्वाधिक प्राचीन मन्दिर मंडलेश्वर (मंडलेश) का शिवालय है। यहाँ से प्राप्त सं. 1237 वि. के एक शिलालेख से पता लगता है कि इस देवालय को यहाँ के परमार राजा मंडलिक (मंडनदेव) के पुत्र चामुंडराज ने अपने पिता की स्मृति में वि. सं. 1136 फाल्गुन सुदी 8 (ई. सं. 1080 ता. 31 जनवरी) शुक्रवार को बनवाया था। इससे यह भी जानकारी मिलती है कि मन्दिर के साथ एक मठ भी था। मन्दिर का मुख्य द्वार तथा परकोटा गिर गए हैं। मन्दिर के बाहर की एक विशाल प्रतिमा अब भी विद्यमान है, जिसका सिर टूटा हुआ है। गर्भ-गृह या निज मन्दिर के द्वार पर सभा-मंडप के ऊपरी गोल तथा बाहर स्तरत्रयों, वरिण्डका और प्रहार भागों में बहुत ही भव्य आकृतियों का तक्षण किया गया है। मन्दिर के मुख्य द्वार के दोनों

पार्श्वों में नीचे ब्रह्मा, ऊपर विष्णु और सबसे ऊपर शिव की मूर्ति है। द्वार पर गणेश और उस पर लकुलीश की मूर्ति है, जिससे स्पष्ट है कि यह मन्दिर पाशुपत लकुलीश सम्प्रदाय का था और यहाँ के मठाधीश (पाशुपत) सम्प्रदाय के कनफड़े साधु थे। निज मन्दिर में शिव लिंग, पार्वती तथा उमा महेश्वर की मूर्तियाँ हैं। मन्दिर के बाहरी ताकों में ताण्डव नृत्य करते हुए शिव, भैरव और चामुण्डा की मूर्तियाँ हैं।

यह शिव पंचायतन मन्दिर था, परन्तु इसके चारों कोनों के छोटे-मोटे मन्दिर नष्ट हो गए, जिनके चिह्न मात्र अब अवशिष्ट हैं। इस मन्दिर के एक ताक में संवत् 1136 फाल्गुन सुदी 7 (ई. सं. 1080 ता. 31 जनवरी) शुक्रवार की बड़ी प्रशस्ति लगी है, जो काव्य और इतिहास दोनों ही दृष्टियों से बड़ी उपयोगी है। उसमें वहाँ के ही परमार राजाओं की वंश परम्परा दी गई है और राजाओं के कार्यों के उल्लेख हैं।

इस मन्दिर के सामने एक पहाड़ी पर भग्नप्राय चार शिव मन्दिर हैं, जिनके आस-पास गणेश, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, नवग्रह ताण्डव नृत्य करते हुए शिव, चामुण्डा, भैरव, दिक्पाल आदि की खण्डित मूर्तियाँ पड़ी हैं।

उक्त पहाड़ी के दक्षिण में कुछ दूर गंगेला (गमेला) तालाब है। इस तालाब के पश्चिम में एक सुन्दर कोरणी वाला दो-मन्जिला द्वार अवस्थित है। इस द्वार के पास भी कई देवालय विद्यमान हैं। ये सामूहिक रूप से हनुमान गढ़ी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस समूह में एक हनुमान का, एक वराह का, एक विष्णु का मन्दिर है, और तीन शिव के मन्दिर। विष्णु मन्दिर में बंशी बजाते हुए कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव की मूर्तियाँ, 18 (अठारह) भुजाओं वाली त्रिमुखी विष्णु की मूर्ति एवं पार्वती और पूतना आदि की मूर्तियाँ रखी हुई हैं। निकट ही पाषाण का बना हुआ एक कुण्ड है जिसके सामने नीलकण्ठ का बड़ा मन्दिर है। उसमें नवग्रह, चामुण्डा, और उमा महेश्वर आदि की मूर्तियां रखी हुई हैं। निज मन्दिर में शिव लिंग के पास पहुँचने के लिए नौ-सीढ़ियाँ उतरनी पड़ती हैं। वहाँ शिव लिंग के अतिरिक्त पार्वती, गणपति और दो उमा-महेश्वर की मूर्तियाँ हैं। चातुर्मास में यह मन्दिर जल से भर जाता है। हनुमान गढ़ी के मन्दिर समूहों में यह सबसे बड़ा मन्दिर है और इसकी तक्षण कला भी बड़ी सुन्दर है।

इसके निकट एक और भग्न शिवालय है, इसकी एक ताक में परमार राजा चामुण्डराज के समय का आधा बिगड़ा हुआ वि. सं. 1137 (ई०स० 1081) का शिलालेख था, जो इस समय अजमेर के राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित है।

इसके निकट एक छोटे से मन्दिर में हनुमान की एक विशाल मूर्ति है जिसकी चरण-चौकी पर वि. सं. 1165 (ई.सं. 1109) का परमार राजा विजय-राज के समय का 9 पंक्तियों का लेख खुदा हुआ है।[1] उस पर बहुत सिन्दूर लगा हुआ था जिसको बड़े श्रम से हटाने पर उसके संवत् आदि का पता लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि यह हनुमान की मूर्ति या तो किसी अन्य मन्दिर से लाकर यहाँ खड़ी की गई है या फिर मन्दिर का द्वार ही किसी मन्दिर (पुराने मन्दिर) का लाकर लगाया गया है। इसके छाबने के मध्य में लकुलीश की मूर्ति है। अतः यह द्वार किसी शिव मन्दिर का होना चाहिए।

यहाँ पर कई जैन मन्दिर भी थे। अब उनके पत्थर, द्वार आदि ले जाकर दूर-दूर के गाँवों में जैनियों ने नए मन्दिर खड़े कर लिए हैं। वर्तमान अर्थूणा गाँव में खड़ा एक आधुनिक जैन मन्दिर भी इन्हीं पुराने मन्दिरों के पत्थरों से बनाया गया है।

1109 ई० (1166 वि.) में भूषण नामक भक्त ने जैनमन्दिर का निर्माण करवाया और विजयराज के काल में वृषभनाथ की मूर्ति का प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न कराया। उसका बड़ा भाई पहुक जो शास्त्रार्थ महारथी था वृद्धावस्था में संन्यासी बन गया। उसका पिता जो इतिहास का अच्छा जानकार और दानी था, माथुर संघ के छत्रसेन का शिष्य था।[2]

एक पहाड़ी पर के टूटे हुए जैन मन्दिर में परमार राजा चामुण्ड-राज के समय के दो शिलालेख बिगड़ी हुई दशा में मिले हैं, जिनमें से एक वि. सं. 1159 (ई.सं. 1102) का और दूसरा भी उसी समय के आसपास का है, जिसमें सम्वत् के अन्तिम दो अंक नष्ट हो गए हैं। ये दोनों भी इस समय राजपूताना म्यूजियम (अजमेर) में सुरक्षित हैं। उक्त जैन मन्दिर की कई दिगम्बर जैन मूर्तियाँ इधर-उधर पड़ी हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ और भी कई टूटे हुए मन्दिर विद्यमान हैं।

---

1. B. RKI-P. 19.
2. Epigraphia Indica XXI, p. 50.

3

अर्थूणा में पुरातात्विक उत्खनन का विवरण

सन् 1970-71 में केन्द्रीय पुरातत्व विभाग की ओर से प्राचीन स्मारकों का पुनरावलोकन एवं अनुसन्धान कार्य आरम्भ किया गया जिसके फलस्वरूप जो नवीन जानकारी अथवा तथ्य उपलब्ध हुए वे निम्न प्रकार हैं: —

प्रथम पहाड़ी की खुदाई . शिव मन्दिर संख्या 4

अर्थूणा ग्राम की भौगोलिक परिस्थिति से ऐसा परिलक्षित होता है कि यह पहाड़ी क्षेत्र है। अतः मूल स्थान के आस-पास छोटी-मोटी कई पहाड़ियाँ स्थित हैं। मुख्य मन्दिर की पूर्व दिशा में 15 या 20 फीट ऊँची एक पहाड़ी की चोटी पर भग्नावशेष था जो निश्चय ही मन्दिर का द्योतक था।

वर्तमान समय में पीपल का विशाल पेड़ था तथा झाड़ियाँ ही उस पहाड़ी या टीले के सौन्दर्य को बढ़ाए हुए थीं पर यह अन्दाजा नहीं हो पाया था कि यह पहाड़ी रहस्यमयी होगी।

संयोग से पुरातत्व अधिकारीगणों ने उस पहाड़ी या टीले का निष्ठापूर्वक निरीक्षण किया। यद्यपि उतनी आशा या विश्वास नहीं था कि कुछ अभूतपूर्व स्थान यह होगा।

खुदाई का शुभारम्भ भारतीय पुरातत्व विभाग भारत सरकार, वेस्टर्न सर्कल बड़ौदा द्वारा दिनाङ्क 1-10-70 को किया गया। यहाँ प्रायः सभी मन्दिर एवं मूर्तियाँ जीर्णशीर्ण अवस्था में हैं तथा हजारों वर्षों से उपेक्षित होने के कारण मिट्टी के ढेर तले सच्चाई को छुपाए हुए पड़ी हैं।

मन्दिर का गर्भगृह एवं सभा-मण्डप स्वाभाविक रूपेण धराशायी हो चुके हैं। प्रथम शिव मन्दिर सं. 4 की खुदाई प्रारम्भ की गई।

पीपल का पेड़ एवं झाड़ियों द्वारा आच्छादित यह ध्वंसावशेष (खण्डहर) था। पीपल एवं झाड़ियों ने अपनी गहरी जड़ों द्वारा उसे पकड़ रक्खा था। बड़ी समस्या थी कि इस विशाल पीपल के पेड़ एवं झाड़ियों को कैसे हटाया जाए?

विभाग ने अनेकानेक मजदूर लगाकर पीपल को एवं झाड़ियों को काटकर, झाड़ा-पौछ कर खण्डहर का सही रूप लाने का प्रयास किया।

खण्डहर के चारों ओर से मलबा हटाना प्रारम्भ किया। जैसे ही मलबा हटाते गए मन्दिर का रूप नीचे से चला आ रहा था।

पुरातत्व विभाग के अधिकारियों को उदयपुर मे स्थित सास-बहू का मन्दिर एवं नागदा मन्दिरों की खुदाई याद आई यह खण्डहर उन्ही मन्दिरों की तरह होगा। यह मन्दिर उसी सच्चाई को लिए छुपा है जो नागदा एवं सास-बहू के मन्दिर में विद्यमान है।

खुदाई का कार्य पूवर्वत् शुरू रक्खा गया। श्री आयुक्त जी. क्यू. शेख साहब, सी. ए. श्री वासुदेव आयर, पुरातत्व विभाग, भारत सरकार उपकार्यालय, उदयपुर की अध्यक्षता में इन पहाड़ियों की खुदाई प्रारम्भ की गई। खुदाई के वक्त इन महानुभावों के साथ मुझे भी रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

यह कल्पना नहीं की जा सकती थी कि इन पहाड़ियों की खुदाई से मूर्तिकला का एक अनुपम नमूना भारत राष्ट्र के गौरव को बढ़ा सकेगा।

उक्त मन्दिर का गर्भगृह एवं सभा-मण्डप प्रायः गिर गए हैं। गर्भगृह एवं सभा-मण्डप की लम्बाई 5 मी. 9 से. मी. एवं चौड़ाई 7 मी. 60 से. मी. है तथा 3 मी. 10 से. मी. गहरी खुदाई करने पर सम्पूर्ण खण्डहर का नक्शा उभर आया।

अत्यधिक विस्मयकारी चीज जिसे उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण है वह यह कि खुदाई समाप्ति के पश्चात् अकस्मात् एक विशाल प्लेटफार्म का

आभास हुआ, जिस पर यह मन्दिर स्थित है, बस देर क्या थी ? प्लेटफार्म का एक छोर मिलते ही विभाग ने तत्परता से उसकी खुदाई आरम्भ की। नवीन जानकारी हाँसिल करने का अदम्य उत्साह, कार्य की गतिशीलता प्रदान कर रहा था। खुदाई से प्राप्त नवीन प्लेटफार्म की लम्बाई 42 मी. 30 से. मी. तथा चौड़ाई 32 मी. 50 से. मी तथा भूमि की सतह से प्लेटफार्म की ऊँचाई 3½ मी. है। प्लेटफार्म भी अपने आप में विशेषता लिए हुए विद्यमान है। प्लेटफार्म के चारों ओर सुन्दर मूर्तिकला के नमूने अंकित है, यहाँ का एक पत्थर कलापूर्ण है। प्लेटफार्म पर भक्तजनों के विश्राम हेतु चारों तरफ कक्ष बने हुए थे, लेकिन खुदाई के समय प्रायः यह नष्ट पाए गए। साथ ही पानी निष्कासन हेतु नालियों का निर्माण उस समय के शिल्पियों की बुद्धि, कला-कौशल का परिचायक है।

खुदाई के पूर्व ही मन्दिर को भीषण घात-प्रत्याघात का सामना करना पड़ा था और स्वयं का बहुतसा नुकसान भी सहना पड़ा था, जिसके प्रमाण स्वरूप वहाँ से पायः खण्डित मूर्तियाँ, लोहे के शस्त्र, मिट्टी के बर्तन, खिलौने तथा अन्य उपकरण है, जिन्हे पुरातत्व के अधिकार में संग्रहीत कर लिया गया है।

खुदाई से प्राप्त मूर्ति के एक पेनल पर नीचे की पट्टी पर निम्न वाक्य अस्पष्ट सा अंकित है जो हमें कुछ सोचने को बाध्य करता है :—

> "संवत् 1196 विशाख शुदि 3 सोमवार दिने रोहिणी नक्षत्रे लग्न………… सडाना…………माधुरा…………में आचार्य………… मालाम रापुलमंत्रि"

यद्यपि लिपि प्राचीन है एवं उसकी आकृति भी अब तक लुप्त-प्राय सी है, तथापि यह तथ्य पूर्ण स्पष्ट है कि मन्दिर आज से एक हजार वर्ष पुराना है।

द्वितीय पहाड़ी की खुदाई : जैन मन्दिर

जब एक सूत्र हाथ लगा तो स्वाभाविक था कि अन्य पहाड़ियों को भी आपरेट किया जाय, और जैसा कि अब तय सा हो गया था। यह पहाड़ी भी अपनेआप में एक विशाल प्लेटफार्म छुपाए हुए है। निज-मन्दिर के चारों ओर प्लेटफार्म की खुदाई की गई। बड़े आश्चर्य की बात

है कि निज मन्दिर के अतिरिक्त खुदाई के वक्त एक विशाल जैन मन्दिर प्राप्त हुआ, जो जीर्णशीर्ण अवस्था में है। जैन मन्दिर की खुदाई से दो विशाल जैन मूर्तियाँ प्राप्त हुईं, एक मूर्ति का आधा अंग विद्यमान है तथा अन्य भाग भग्न हो चुका है, आधा अंग जो शेष है,उसकी लम्बाई 6 फीट की है, जिससे अनुमान लगाया जाता है कि यह मूर्ति 12 फीट की रही होगी।

द्वितीय जैन मूर्ति की लम्बाई 7½ फीट की है जो काले पत्थर की है, इस जैन मन्दिर की मूर्ति के नीचे निम्नलिखित अंकित है :—

संवत् 1514 वैशाख शुदी 15 शनो श्रीमल सं. सरस्वती.......
स श्री सकल कीर्ति देवा तत्पचेल-श्री विमलेन्द्र कीन्नप...............
प्रतिष्ठितं ।।

तृतीय पहाड़ी की खुदाई : शिव मन्दिर सं. 1

इस पहाड़ी पर स्थित विशाल देवालय मूर्तिकला की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इसके आस-पास दो छोटे भग्न खण्डहर स्थित हैं। शिवालय के निकट ही एक दीप स्तम्भ है जो शिल्पकला का अनुपम नमूना है।

उक्त पहाड़ी की खुदाई होने पर विशाल प्लेटफार्म निकला। आशा है पूर्ण खुदाई होने पर नवीन तथ्यों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

शिव मन्दिर सं. 1 पर खुदाई का कार्य दिनाङ्क 15-4-72 से प्रारम्भ हुआ। खुदाई के मध्य अनेक सुन्दर मूर्तियाँ एवं स्थापत्य कला के भग्नावशेष उपलब्ध हुए। मन्दिर के उत्तरी भाग में 300 वर्ग मीटर पत्थर का फर्श भी मिला।

जीर्णोद्धार कार्य

मन्दिर के भग्न पाषाण-खण्डों एवं मूर्ति-खण्डों को मूल स्थानों पर लगा दिया गया है। मन्दिर का उत्तर-पश्चिमी भाग बिल्कुल भग्न था तथा उसका निर्माण कार्य चल रहा है। इस भाग की मरम्मत हेतु पाषाण-खण्ड तथा मूर्ति के भग्न भाग खुदाई के अन्तर्गत लिए गए एवं दूसरे भागों से भी लिए जा रहे हैं।

मन्दिर के सामने के भाग के दो कोनों पर भी थोड़ा पुनर्निर्माण का कार्य हुआ है। इस कार्य के लिए खुदाई में मिले प्राचीन पाषाण-खण्डों का उपयोग किया गया है।

4
अर्थूणा मन्दिर समूह

हनुमान मन्दिर समूह में छोटे बड़े कुल बारह मन्दिर हैं, छः छोटी देव कुलिकाएँ व एक विशाल कुण्ड स्थित है। मोढेरा (उत्तर गुजरात) के सूर्य कुण्ड की तरह इस कुण्ड के चारों कोनों पर कुल सात मन्दिर है, उसी तरह कुण्ड के ऊपर मन्दिरों के अवशेष तथा अर्द्ध भग्न अवस्था में मन्दिर स्थित हैं।

बारह मन्दिरों में से नव मन्दिर एकाण्डी शैली के हैं। दो मन्दिर तो देव कुलिका जैसे माने जाते हैं।

दसवीं शताब्दी में बने हुए इन एकाण्डी मन्दिरों का अधिकांश भाग काले भुलडिया पत्थर से बना हुआ है, नीले रंग के डूँगरपुरी भुलडिया पत्थर शिल्प प्रतिमाओं के निर्माण में सख्त पड़ता है फिर भी इस पर किया गया रूप काम उच्च कोटि का है। ग्रेनाइट पत्थर से मिलते-जुलते इस पत्थर को स्थानीय सोमपुरा शिल्पी भुलड़ियाँ पत्थर के नाम से परिचय देते हैं। यह पत्थर स्लेट स्टोन और ग्रेनाइट स्टोन दोनों के मध्य की कड़ी है ऐसा कहें तो अत्युक्ति न होगी।

शिव मन्दिर

हनुमान जी के मन्दिर के पास पूर्वाभिमुख एक एकाण्डी शिव मन्दिर स्थित है, इन मन्दिरों के समूह में यह शिव मन्दिर सबसे महत्त्वपूर्ण है।

शिव मन्दिर के मण्डप पर उत्कीर्ण नैऋत्य कोण में भैरव की मूर्ति, वायव्य कोण में वासुदेव की मूर्ति, ईशान कोण में शिवजी की मूर्ति, अग्नि

कोण में अग्निदेव की मूर्ति, उत्तर दिशा में कुबेर की मूर्ति, दक्षिण दिशा में यम की मूर्ति, पश्चिम दिशा में वरुण की मूर्ति, पूर्व दिशा में इन्द्रदेव की मूर्ति, इस प्रकार आठों दिक्पाल की मूर्तियां शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं।

इन सभी मूर्तियों की बनावट में गुप्तशैली का प्रभाव प्रतीत होता है। इन मूर्तियों में खजुराहो के कौन्दर्य महादेव के मन्दिर के समान शिल्प कला व शिल्प सौन्दर्य झलकता है। मुख भाव की दृष्टि से अर्थूणा की शिव मन्दिर की शिल्प कला खजुराहो के मन्दिरों की शिल्प कला से उच्च श्रेणी में आ सकती है, सभी मूर्तियों में सजीवता व लावण्य दिखाई देता है। यही नहीं, सभी मूर्तियों में देवों का दैवत्व पृथक्-पृथक् दृष्टिगोचर होता है।

दिक्पालों की मूर्तियों के उपरान्त इन मूर्तियों के दोनों तरफ खड़ी हुई अप्सराओं की मूर्तियों का शिल्प-सौन्दर्य, देह-लालित्य की दृष्टि से बहुत ही सजीव प्रतीत होती है। इन मूर्तियों में बन्दरों का खेल, दर्पण दर्शन, वस्त्र धारण, केश मार्जन, उपहास दर्शन, बहुत ही सुन्दर ढंग से उभारे गए हैं। मन्दिर का अर्द्ध-मण्डप बहुत ही छोटा प्रतीत होता है, लेकिन उसका शिखर सामरण से शोभायमान हो रहा है। इस मन्दिर के गर्भ गृह के द्वारशाखा की खुदाई साफ व सुन्दर है। द्वार के दोनों तरफ शक्तिनी की मूर्तियां अंकित हैं एवं ऊपर के भाग में छोटी-छोटी रथिकाओं में देव मूर्तियां खुदी हुई हैं।

मन्दिर के गर्भ गृह में स्थित पालीघाट (मानुषी) का शिवलिंग खेडब्रह्मा तहसील (गुजरात) के मटोड़ा गांव के शिवलिंग से पूर्णतया मिलता हुआ है, इस शिवलिंग के ऊपर ब्रह्मसूत्र खुदे हुए हैं, शिवलिंग झूलड़ियां पत्थर पर खुदे हुए हैं, शिव मन्दिर के मण्डप के ऊपरी भाग पर स्थित भद्र देवताओं की दक्षिण दिशा में चामुण्डा, उत्तर दिशा में नृत्य शिवनी की मूर्तियां विद्यमान हैं। सोलंकी युग तथा उसके एक शताब्दी पूर्व बने शिव मन्दिरों के भद्र देवताओं की उत्तर दिशा में अन्धकासुर वध की मूर्ति खुदी हुई है।

साथ ही कहीं-कहीं लकुलीश की मूर्ति भी देखने को मिलती है, गुजरात के सोलंकी राजाओं के कुलगुरु पाशुपत सम्प्रदाय को मानते थे तथा जहां-जहां सोलंकी राज्य की परम्परावादी गद्दियों वाले मन्दिर हैं,

वहां प्रायः लकुलीश की मूर्ति हमें देखने को मिलती है । पाशुपत सम्प्रदाय के साथ लकुलीश सम्प्रदाय का निकटतम सम्बन्ध था तथा ये शिल्प-प्रतिमाएँ उसी के अनुरूप बनाई गई हो, ऐसा कहा जा सकता है ।

कई स्थानों पर गुरु की गद्दी वाले मुख्य मन्दिरों के पास गुरुओं की समाधि के मन्दिर बनाए गए हैं । ये मन्दिर बड़े पैमाने पर शिव मन्दिर होते हैं और इसमें भद्र देवताओं के साथ-साथ उत्तर दिशा में लकुलीश की मूर्ति खुदी हुई देखने को मिलती है । गुजरात के बनासकाठा जिले के वाव गांव के पास कपिलेश्वर महादेव मन्दिर समूह में तथा साबरकाठा के अनेक मन्दिरों में इसी भांति लकुलीश की मूर्तियां देखने को मिलती हैं, हनुमानजी के मन्दिर समूह में प्रथम शिव मन्दिर के समीप द्वितीय शिव मन्दिर का शिखर एकाण्डी शैली का है । मन्दिर के मण्डप के ऊपरी भाग में भद्र देवता के गवाक्ष में पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की ओर तीन मूर्तियां खुदी हुई हैं । ये तीन प्रतिमाएँ अन्धकासुरवध, शिव नृत्य और चामुण्डा की मूर्तियां हैं ।

हनुमान मन्दिर समूह क शेष आठ मन्दिर सादे हैं, किन्तु इनकी बनावट ग्यारह सौ वर्ष पुरानी प्रतीत होती है । विशाल शिव मन्दिरों में पालीघाट के मानुषी शिव लिंग रखे गए हैं । इन मन्दिरों के समूह में सबसे महत्त्वपूर्ण काण्डी शिव मन्दिर माना जाता है, इसे इन मन्दिर समूह का मुख्य मन्दिर कह सकते हैं ।

यह शिव मन्दिर ऊपर वर्णित मन्दिरों के बाद में बनाया गया हो या इसका जीर्णोद्धार किया गया हो ऐसा प्रतीत होता है । मन्दिर का विशाल सभा मण्डप, मन्दिर की भव्यता को दर्शाता है । सभा मण्डप की वैदिका के ऊपर राजसेना, सामाजिक जीवन एवं कामसूत्र के अनेक दृश्य खुदे हुए हैं ।

बड़े शिव मन्दिर के मण्डप के ऊपर भद्र देवता के गवाक्ष में उत्तराभिमुख लकुलीश मूर्ति खुदी हुई है, पद्मासन वाली उर्ध्वलिंग लिए हुए बैठी यह मूर्ति गुजरात एवं राजस्थान की लकुलीश मूर्तियों के समान गिनी जा सकती है । मन्दिर के शिखर भाग के ऊपर सभा मण्डप के सामरण के मध्य भाग में शुकनाथ सिंह का शिल्प अर्ध भग्न अवस्था में विद्यमान है । मन्दिर के गर्भ गृह में द्वार शाखा के निचले भाग मे एक ओर कुबेर और दूसरी तरफ गणेश की मूर्ति खुदी हुई विद्यमान है ।

सप्त शाखा वाला यह द्वार शिल्प कला तथा शिल्प सौन्दर्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

शिव मन्दिर के सामने स्थित कुण्ड का निर्माण राजस्थान के कुण्ड निर्माण कार्यो मे से बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है किन्तु दुर्भाग्य से कुण्ड का अधिकांश भाग ध्वस्तप्राय है।

स्मारक

अर्थूणा में इस समय 35 मन्दिर विद्यमान हैं; इनमें से कुछ जीर्णावस्था में हैं। भारतीय पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग (नई दिल्ली) इन प्राचीन स्मारकों का जीर्णोद्धार एवं उत्खनन कार्य करवा रहा है। इन प्राचीन स्मारकों को तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

पहला वर्ग–हनुमान मन्दिर समूह

इस समूह में छोटे-बड़े 15 मन्दिर हैं, इसमें नीलकण्ठ महादेव का मन्दिर सबसे विशाल है जो स्थापत्य कला के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका द्वार अत्यन्त सुन्दर मूर्तिकला से अलंकृत है। इस मन्दिर में आज भी पूजा होती है। मन्दिर के दक्षिणी भाग की एक ताक में लकुलीश की मूर्ति विद्यमान है। लकुलीश शिव के 18 अवतारों में से पहला माना जाता है। प्राचीन काल में पाशुपत (शैव) सम्प्रदायों में लकुलीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और अब सारे राजस्थान, गुजरात, मालवा, आदि में लकुलीश की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। लकुलीश मूर्ति के सिर पर जैन मूर्तियों के समान केश होते हैं जिससे यह मान बैठते हैं कि यह जैन मूर्ति है, परन्तु वह जैन नहीं शिव के अवतार की एक मूर्ति है। वह द्विभुज होती है। उसके बाएँ हाथ में लकुट (दण्ड) रहता है जिससे लकुलीश तथा लकुटीश नाम पड़े और दाहिने हाथ में बीजोरा नामक फल होता है जो शिव की त्रिमूर्तियों के मध्य के दो हाथों में से एक में पाया जाता है। वह मूर्ति पद्मासन बैठी हुई होती है।

इसके अतिरिक्त एक वराह का, एक विष्णु का, एक हनुमान का व अन्य शिव मन्दिर हैं। हनुमान मन्दिर में आज भी पूजा होती है।

दूसरा वर्ग दक्षिण में : जैन मन्दिर

अन्य जैन मन्दिरों के जीर्णावशेषों के साथ दो जैन मन्दिर अभी भी विद्यमान हैं। साथ ही चार शिव पंचायतन मन्दिर हैं जो शिव पंचायतन

शैली के हैं, जिन्हें जगती पर बनाया गया है। विशाल प्लेट फार्म पर बने ये मन्दिर स्थापत्य कला के इतिहास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

तीसरा वर्ग-शिव मन्दिर समूह

उत्तर में एक शिव पंचायतन मन्दिर है जिसे मण्डलेश्वर कहा जाता है। यह मन्दिर सबसे पुराना है। इसे यहाँ के परमार राजा मण्डलिक के पुत्र चामुण्डराज ने अपने पिता की स्मृति में वि० सं० 1136 (ई० स० 1080) में बनवाया था, जिसका शिला लेख विद्यमान है। निज मन्दिर के सामने चार अन्य शिव मन्दिर हैं जो सादगी लिए हुए हैं।

अर्थूणा, गुजरात, मध्य प्रदेश, राजस्थान तीनों राज्यों के यात्रियों के लिए यह मार्ग जुड़ा हुआ है। गुजरात से आने वाले यात्रियों के लिए दाहोद से भूखिया, भूखिया से अर्थूणा पहुँचा जा सकता है। मध्य प्रदेश से आने वालों के लिए रतलाम से बाँसवाड़ा और बाँसवाड़ा से यहाँ के लिए यातायात के उत्तम साधन हैं। राजस्थान के यात्रियों के लिए उदयपुर से डूँगरपुर, डूँगरपुर से यहाँ पहुँचने हेतु यातायात की सुविधा है।

मूर्तिकला

अर्थूणा की मूर्तिकला को 5 श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

I. शैव, II वैष्णव III. जैन सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्धित मूर्तियाँ।

IV. दिक्पालों की मूर्तियाँ।

V. अप्सरा आदि की मूर्तियाँ।

1. शैव सम्प्रदाय—ईस्वी सदी से कई शताब्दी पूर्व शैव सम्प्रदाय का भारतवर्ष में पूर्ण रूप से प्रचार हो चुका था। विभिन्न विदेशी आक्रमणों के बावजूद उत्तरोत्तर यह सम्प्रदाय उन्नत पथ पर अग्रसर होता रहा। मध्य युग में उत्तरी भारत के राजाओं का मुख्य धर्म यह बन गया था। राजपूत वंशों की नई-नई शक्तियाँ उत्तर भारत में प्रकट हुईं। वे सभी राजवर्ग प्रायः शैव सम्प्रदाय के अनुयायी थे जिनमें परमार राजाओं की गणना विशेष रूप से की जा सकती है। इन राजाओं के कारण उत्तर भारत के सुदूर प्रान्तों में शिव से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की मूर्तियों एवं मन्दिरों का निर्माण हुआ।

आगे चल कर शैव सम्प्रदाय में भी वैष्णव धर्म के समान अद्वैत-द्वैत, वीरशैव विशिष्टा द्वैत आदि अनेक सम्प्रदाय प्रचलित हुए। ये शिव को संसार की परमसत्ता मानते थे जो सृष्टि का मूल कारण है। संसार के पालन एवं भक्तों पर अनुगृह के कारण शिव का सौम्य रूप है। यही सृष्टि के संहारक होने के कारण रौद्र रूप में भी है। विभिन्न विद्याओं के प्रवक्ता एवं उमा का पति भी यही शिव है।

पौराणिक कथाओं के आधार पर भगवान शिव की अनेक प्रकार की मूर्तियाँ मध्य युग में शिलाखण्डों पर उत्कीर्ण की गई। इन सबसे सम्बन्धित शिव की अनेक मूर्तियाँ व मन्दिर अर्थूणा में विद्यमान हैं; जैसे लकुलीश, शिव पंचायतन मन्दिर, नीलकण्ठ महादेव, चामुण्डा, अन्धक वध आदि।

2. वैष्णव सम्प्रदाय—ईस्वी सदी से तीसरी शताब्दी पूर्व तक भारतवर्ष में वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार हो चुका था। अनेक विदेशी राजा एवं राजपुरुष भी इस सम्प्रदाय से प्रभावित होकर वैष्णव धर्म को अपनाया था। देवाधिदेव भगवान वासुदेव को परम उपास्य मानकर गरुड़ध्वजों की स्थापना विभिन्न स्थानों पर कराई गई थी।

मध्य युग के गुप्त काल में वैष्णव सम्प्रदाय की प्रमुखता थी, यह सम्प्रदाय भक्ति मार्ग का पोषक था। कर्मकाण्ड तथा अन्य उपासनाओं की अपेक्षा इस सम्प्रदाय में भक्ति की प्रधानता थी। शुंग काल से ही विष्णु मन्दिर, रामकृष्ण, वासुदेव आदि देवताओं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित की जाने लगी थी। अपने उपास्य देव को प्रसन्न करने के लिए नाच-गान की प्रथा भी प्रारम्भ हो गई थी। देव मूर्ति को उप लक्षण मात्र न स्वीकार कर जागृत पुरुष के समान स्थान, भोग, साज, शृंगार आदि के द्वारा देवता को प्रसन्न करने की प्रथा चल पड़ी थी। इनमें गोपियों का कृष्ण के साथ सम्बन्ध, अनेक प्रकार का विहार आदि भी इस काल में शिलाओं पर उत्कीर्ण किया जाना प्रारम्भ हो चुका था। उपर्युक्त सम्प्रदाय से सम्बन्धित देवताओं की मूर्तियाँ एवं मन्दिर परमार वंशीय राजाओं के द्वारा अर्थूणा में स्थापित की गई हैं, जिसका सम्बन्ध भागवत धर्म एवं पुराणों से है।

दक्षिणी भारत में इस सम्प्रदाय का विशेष रूप से प्रचार हुआ। नाथमुनि, यमुनाचार्य, निम्बार्क, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्य दार्शनिक पृष्ठभूमि में प्रमुख हैं। इनसे सम्बन्धित निम्नलिखित मन्दिर तथा मूर्तियाँ अर्थूणा में विद्यमान हैं।

हनुमान मन्दिर, विराट विष्णु, अष्ट भुज, गोवर्धन धारी श्री कृष्ण आदि ।

3. जैन सम्प्रदाय—जैन धर्म के संस्थापक भगवान महावीर का जन्म कुण्डग्राम में 599ई० पू०में बिहार में हुआ था, धीरे-धीरे इस सम्प्रदाय का सम्पूर्ण भारत में प्रचार हो गया । मध्य युग में राजस्थान तथा गुजरात जैन धर्म के मुख्य केन्द्र था । अनेक राजा एवं राजपुरुष इस धर्म के अनुयायी एवं प्रचारक हुए । इन राजगणों ने विस्तृत रूप से विभिन्न स्थानों पर विशाल मन्दिर व मूर्तियों का निर्माण कराया जो वर्तमान काल में जैन धर्मावलम्बियों के तीर्थ स्थान है । यहाँ निर्माण कार्य में करोड़ों का धन मन्दिरों और मूर्तियों को सम्पन्न बनाने के लिए व्यय किया गया था । इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित मन्दिर तथा मूर्तियाँ अर्थूणा में हैं जिनमें कुछ नष्टप्राय हैं, कतिपय भग्नावशेष हैं, कुछ सुरक्षित भी हैं। जैसे कि प्रथम जैन मन्दिर, अच्छुता विद्या देवी मूर्ति, भगवान महावीर, शान्तिनाथ, आदिनाथ, नैमिनाथ तथा गौतम आदि गण धर्म की मूर्तियाँ ।

4. दिक्पालों की मूर्तियाँ—भारतीय दर्शन तथा धार्मिक परम्पराओं में प्राणी मात्र की सब प्रकार की रक्षा के लिए विभिन्न दिशाओं के विभिन्न स्वामिओं की कल्पना की गई है जो तत्तत् दिशाओं के स्वामी होने के कारण दिगीश एवं संरक्षक होने के कारण दिक्पाल पुकारे जाते हैं । धार्मिक परम्परा में आत्म रक्षा एव अभीष्ट सिद्धि के लिए इनकी पूजा सेवा आदि का भी विधान है । इन दिक्पालों में वरुण, कुबेर, इन्द्र, यम, और अग्नि प्रधान है । परमार वशीय राजाओं के द्वारा भारतीय धर्म एवं परम्पराओं के अनुरूप दिक्पालों के मूर्तियों की स्थापना अर्थूणा में की गई जिनमें निम्नलिखित दिक्पालों की मूर्तियाँ आज भी उपलब्ध हैं; जैसे कि दिक्पाल, यमराज, कुबेर मूर्ति, अग्निदेव, वरुण मूर्ति आदि ।

5. अप्सरा आदि की मूर्तियाँ—भारतीय धर्म एवं संस्कृति में पारलौकिक सुख के लिए स्वर्ग की प्रमुखता है । स्वर्ग में ही देवताओं की स्थिति तथा उनके विलास के लिए अनेक विध सौन्दर्य सम्पन्न अप्सराओं की कल्पना की गई । जो इस लोक में पुण्य अर्जित कर स्वर्ग में जाकर इच्छित भौतिक सुख का भोग साधन बनती है । इन अप्सराओं में रम्भा, तिलोत्तमा, उर्वसी, मोहिनी, मेनका आदि की प्रमुखता है ।

भारतीय मूर्तिकला तथा स्थापत्य कला पर भी इस धार्मिक एवं साँस्कृतिक परम्परा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा जो आज भी जगन्नाथ,

खजुराहो, पाशुपतिनाथ आदि मन्दिरों में अप्सराओं तथा विभिन्न प्रकार के काम शास्त्रीय आसनों के मूर्त रूप में प्रेक्षकों को दिखाई देती है। इसका तान्त्रिक दृष्टि से दूसरा ही महत्त्व रहा होगा। यह प्रतीत होता है कि मन्दिरों में देव दर्शन की अभिलाषा से जब उपासक जाता है तो उपासक के मानस पटल पर बाह्य भाग लिप्सा का प्रभाव न रह जाय अथवा कामना नष्ट हो जाय एवं एकाग्रचित्त से उपास्य देव की अर्चना वंदना करे इस दृष्टि से भी अप्सरा एवं आसनों का मन्दिर के बाह्य भाग में मूर्तिकला रूप में प्रदर्शित करना सामाजिक परम्परा रही होगी। इसी प्रकार अर्थूणा मन्दिर समूह में भी छत, स्तम्भ एवं भीतरी दिवारों पर अप्सराओं की मूर्तियाँ और नायिकाओं को उत्खनित किया गया है। ये मूर्तियाँ गोलाकार या उभारदार हैं। वास्तविक रूप में इन्हें कला का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। अधिकतम अप्सराएँ नृत्य मुद्राओं में अथवा देवताओं की सेविकाओं के रूप में उत्कीर्ण हैं।

इनके हाथ जुड़े हुए दिखाई देते हैं। ये कमल, दर्पण, आभूषण, जलपात्र आदि वस्तुएँ देवताओं को समर्पण करने के लिए उद्यत प्रतीत होती हैं। अप्सराओं एवं नायिकाओं को अलग करने में बहुधा कठिनाई का अनुभव होता है, इसका कारण उनका हाव-भाव एवं प्रतिकृति की समानता है।

इन मूर्तियों में कतिपय मूर्तियाँ कामोत्तेजक तथा आकर्षक है, जिनका खजुराहो आदि के समान कामसूत्र से सम्बन्ध प्रतीत होता है जो यौन सुख एवं शृंगारिक वासनाओं को अभिव्यक्त करती हैं। इसके साथ-साथ शृंगार रस के संचारी भाव के पौषक उद्यान, शुक, वानर, हाथी, अश्व आदि की मूर्तियाँ भी उत्खनित हैं जो दर्शकों को सहसा अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

अर्थूणा के अप्सराओं की मूर्तियों में इनकी प्रमुखता है—अप्सरा केलि, अप्सरा वस्त्र परिधान, बन्दर खेलन अप्सरा आदि।

5
अर्थूणा : उत्कृष्ट शिल्प प्रतिमायें

भैरव

भैरव के आठ प्रकार हैं—इनमें बटुक भैरव एक बालक के रूप में है, प्राचीन शिव मन्दिरों के नैऋत्य कोण में भैरव की मूर्ति रखने में आती है, इस मूर्ति की विशेषता यह है कि इसके कटिमेखला के नीचे घण्टिका लगी हुई है, हाथ और पैरों के गहनों पर माघ बन्धन की खुदाई की गई है एवं बाएँ पैर के पास बटुक की सवारी के लिए कुत्ता दिखाई देता है, इस

दिगम्बर मूर्ति के दो हाथ टूट गए हैं, दूसरे हाथों में तलवार एवं ढाल धारण किए हुए दिखाई देते हैं।

चामुण्डा

शिव मन्दिर की दक्षिण दिशा में भद्र देवता के गवाक्ष में चामुण्डा की मूर्ति रखने में आई है। इस मूर्ति का स्वरूप कंकाल अवस्था में है। इसके दोनों हाथों में प्रदक्षिणा के क्रम से त्रिशूल, नागफेण, नाग पुच्छ (खटवांग) एवं भिक्षापात्र में मछली रखी हुई दिखाई देती है, देवी हाथी का चमड़ा पहने हुए है एवं इसके बाएँ पैर के पास उसका सेवक सोया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

लकुलीश

पाशुपत सम्प्रदाय के अनुसार शिव मन्दिर की उत्तर दिशा के गवाक्ष में लकुलीश मूर्ति रखने का रिवाज प्रचलित था, लकुलीश शिव का ही अवतार स्वरूप माना जाता है। अर्थूणा में नीलकंठ महादेव के सबसे पुराने शिव मन्दिर में भद्र देवता की उत्तर दिशा के गवाक्ष में पद्मासन वाली लकुलीश मूर्ति रखी हुई है। इस मूर्ति के एक हाथ में डंडा है एवं दूसरा हाथ खण्डित है। इस मूर्ति के सिर पर बालों की खुदाई,बौद्ध मूर्ति की तरह घुँघराले बाल वाली बनायी गई है, एवं कानों की बुट्टियों में छेद है। इनके आसन के नीचे नन्दी एवं शिव सेवक के चित्र दिखाई देते है।

अप्सरा केलि

एक वृद्ध के साथ केलि करती हुई अप्सरा की मूर्ति बताती है कि वृद्ध का स्वभाव बालक के स्वभाव के समान होता है, मूर्ति का भास्कर्य बहुत उच्च कोटि का है, मूर्ति द्विभंग में खड़ी है। मूर्ति के गले में पंचवल्ली हार पहनाया हुआ है।

अप्सरा वस्त्र परिधान

इस मूर्ति में वस्त्र परिधान करती हुई अप्सरा बताई गई है, मूर्ति के दो हाथ में कमर पट्टक रखा हुआ है। मूर्ति के दोनों भुजा पर बड़ी माला का बाजू बन्दक दिखाई पड़ता है। अथूणा मूर्ति समूह में यह मूर्ति शृंगार की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

शिव पंचायतन मन्दिर

शिव पंचायन मन्दिर के सभा मण्डप का पुनरुद्धार किया दिखाई पड़ता है, सभा मण्डप की तीनों दिशाओं में तीन चौकियां दिखाई पड़ती हैं; सभा मण्डप का सामरण अच्छी हालत में है ।

प्रथम जैन मन्दिर

अर्थूणा हनुमान मन्दिर समूह से थोड़ी दूर पहाड़ी के पीछे पुराना अर्थूणा नगर की जैन बस्ती में पाया गया यह मन्दिर अर्द्धभग्न स्थिति में खड़ा है, मन्दिर के श्रृंगार चौकी के चार स्तम्भ हैं और मन्दिर का गूढ़ मण्डप ठीक हालत में है, नीज मन्दिर का शिखर भाग आधा टूटा हुआ है।

विराट विष्णु

भगवान विष्णु के विराट् स्वरूप की मूर्ति है, मूर्ति की वेशभूषा में तीन भुजाएँ अच्छी हालत में है, बाकी सभीं भग्न हो चुके हैं, बचे हुए नीचे के हाथ में अक्षमाला और शंख दिखाई पड़ते हैं और ऊपर के हाथ में ब्रह्माजी की मूर्ति धारण की गई दिखाई पड़ती है। ललितासन में बैठी यह मूर्ति गरुड़ वाहना है।

अच्छुता विद्यादेवी

जैनों की षोडश विद्या देवियों में यह अच्छुता विद्यादेवी है, उसके हाथ में खड्ग, बाण, धनुष, ढाल हैं, इसका वाहन अश्व है, यह मूर्ति बड़े जैन मन्दिर के जगती के गवाक्ष में रखी हुई है।

दिगम्बर मूर्ति के दो हाथ टूट गए हैं, दूसरे हाथों में तलवार एवं ढाल धारण किए हुए दिखाई देते हैं।

चामुण्डा

शिव मन्दिर की दक्षिण दिशा में भद्र देवता के गवाक्ष में चामुण्डा की मूर्ति रखने में आई है। इस मूर्ति का स्वरूप कंकाल अवस्था में है। इसके दोनों हाथों में प्रदक्षिणा के क्रम से त्रिशूल, नागफेण, नाग पुच्छ (खटवांग) एवं भिक्षापात्र में मछली रखी हुई दिखाई देती है, देवी हाथी का चमड़ा पहने हुए है एवं इसके बाएँ पैर के पास उसका सेवक सोया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

लकुलीश

पाशुपत सम्प्रदाय के अनुसार शिव मन्दिर की उत्तर दिशा के गवाक्ष में लकुलीश मूर्ति रखने का रिवाज प्रचलित था, लकुलीश शिव का ही अवतार स्वरूप माना जाता है। अर्थूणा में नीलकंठ महादेव के सबसे पुराने शिव मन्दिर में भद्र देवता की उत्तर दिशा के गवाक्ष में पद्मासन वाली लकुलीश मूर्ति रखी हुई है। इस मूर्ति के एक हाथ में डंडा है एवं दूसरा हाथ खण्डित है। इस मूर्ति के सिर पर बालों की खुदाई,बौद्ध मूर्ति की तरह घुँघराले बाल वाली बनायी गई है, एवं कानों की बुट्टियों में छेद है। इनके आसन के नीचे नन्दी एवं शिव सेवक के चित्र दिखाई देते है।

अप्सरा केलि

एक वृद्ध के साथ केलि करती हुई अप्सरा की मूर्ति बताती है कि वृद्ध का स्वभाव बालक के स्वभाव के समान होता है, मूर्ति का भास्कर्य बहुत उच्च कोटि का है, मूर्ति द्विभंग में खड़ी है। मूर्ति के गले में पंचवल्ली हार पहनाया हुआ है।

अप्सरा वस्त्र परिधान

इस मूर्ति में वस्त्र परिधान करती हुई अप्सरा बताई गई है, मूर्ति के दो हाथ में कमर पट्टक रखा हुआ है। मूर्ति के दोनों भुजा पर बड़ी माला का बाजू बन्दक दिखाई पड़ता है। अथूणा मूर्ति समूह में यह मूर्ति शृंगार की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

शिव पंचायतन मन्दिर

शिव पंचायन मन्दिर के सभा मण्डप का पुनरुद्धार किया दिखाई पड़ता है, सभा मण्डप की तीनों दिशाओं में तीन चौकियां दिखाई पड़ती हैं; सभा मण्डप का सामरण अच्छी हालत में है।

प्रथम जैन मन्दिर

अर्थूणा हनुमान मन्दिर समूह से थोड़ी दूर पहाड़ी के पीछे पुराना अर्थूणा नगर की जैन बस्ती में पाया गया यह मन्दिर अर्द्धभग्न स्थिति में खड़ा है, मन्दिर के श्रृंगार चौकी के चार स्तम्भ हैं और मन्दिर का गूढ़ मण्डप ठीक हालत में है, नीज मन्दिर का शिखर भाग आधा टूटा हुआ है।

विराट विष्णु

भगवान विष्णु के विराट् स्वरूप की मूर्ति है, मूर्ति की वेशभूषा में तीन भुजाएँ अच्छी हालत में है, बाकी सभी भग्न हो चुके हैं, बचे हुए नीचे के हाथ में अक्षमाला और शंख दिखाई पड़ते हैं और ऊपर के हाथ में ब्रह्माजी की मूर्ति धारण की गई दिखाई पड़ती है। ललितासन में बैठी यह मूर्ति गरुड़ वाहना है।

अच्छुता विद्यादेवी

जैनों की षोडश विद्या देवियों में यह अच्छुता विद्यादेवी है, उसके हाथ में खड्ग, बाण, धनुष, ढाल हैं, इसका वाहन अश्व है, यह मूर्ति बड़े जैन मन्दिर के जगती के गवाक्ष में रखी हुई है।

दिक्पाल यमराज

बड़े जैन मन्दिर की जगती की दक्षिण दिशा के गवाक्ष में यह मूर्ति रखी हुई है। मूर्ति के ऊपर के दोनों हाथ टूट गए हैं; नीचे का एक हाथ अभय मुद्रा में दिखाई पड़ता है, और दूसरे हाथ में जल पात्र रखा गया है। जलपात्र के नीचे यम का वाहन-भैंसा की मूर्ति रखी हुई है। यह मूर्ति ललितासन में बैठी हुई है।

सूर्य मूर्ति

(शिव पंचायतन मन्दिर अर्थूणा)

इस मूर्ति के नीचे सात के बजाय दो अश्व की प्रतिमायें दिखाई देती हैं। यही इस मूर्ति की विशेषता है। सूर्य के एक तरफ उसकी पत्नी संज्ञा और दूसरी ओर उसकी दूसरी पत्नी छाया या परिचारिकाएँ खड़ी हुई दिखाई दे रही हैं।

कुबेर मूर्ति

कुबेर मूर्ति के ऊपर के दोनों हाथों में धन की थैली दिखाई देती है। पूरे शरीर पर आभूषण दृष्टिगोचर होते हैं, उनके बाएँ पैर के पास कुबेर का वाहन हाथी है। कुबेर के पास में मयूर के साथ खेलती अप्सरा की मूर्ति दिखाई देती है।

बन्दर खेलन अप्सरा

इस मूर्ति में अप्सरा बन्दर के साथ खेल रही है। बन्दर अप्सरा के वस्त्र खीचता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस मूर्ति मे हेयर स्टाइल की विशेषता विशेष प्रकार की है। गले मे चार प्रकार के हार दिखाई देते है।

अग्निदेव

(हनुमान मन्दिर समूह)

अग्निदेव की चतुर्हस्त मूर्ति के चारों हाथों में बाँयां वरदहस्त अखण्डित है, जबकि दाँयां हाथ कलश धारण किए हुए है। यह थोड़ा खण्डित है, अग्निदेव का सिर जटा, मुकुट, दाढी एवं आभूषणों से अलंकृत है एवं इस मति के दाएँ पैर के पास उनका सवारो भेड़ दिखाई देती है।

अन्धक वध

शिव एक पैर पर खड़े रहकर त्रिशूल से अन्धकासुर का वध कर रहे हैं। शिवजी के बायें पैर के पास योगेश्वरी दिखाई पड़ती है और दायें पैर के नीचे सेवक है। शिवजी आठ हाथों से अन्धकासुर का त्रिशूल से वध करते हुए दिखाए गए हैं।

अष्टभुज गोवर्धनधारी श्री कृष्ण

श्री कृष्ण के पैरों के नीचे दो गायें और गरुड़ दिखाई दे रहे हैं। हाथ की तर्जनी अंगुली द्वारा गोवर्धन पर्वत उठाए एवं बंसी बजाते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। दूसरे हाथों में वरद, गदा, शंख व चक्र हैं।

गोवर्धन पर्वत के ऊपर मोर, हँस और सिंह दिखाए गए हैं।

6

ऐतिहासिक शिलाभिलेख

पाणाहेड़ा शिलाभिलेख

(1) अत्राशी (सी) त्परमारवंशवितततो लब्धा(ब्धा)न्वयः पार्थिवो नाम्ना
श्रीधनिको धनेस्व (श्व) र इव त्यागैककल्पद्रुमः....॥26॥
श्रीमहाकालदेवस्य निकटे हिमपांडुरं ।
श्री धनेश्वर इत्युच्चैः कीर्तितं वस्य राजते....॥27॥
वि. सं. 1116 का पाणाहेड़ा (बाँसवाड़ा राज्य) का शिलालेख ।

(2) चच्चनामाभवत्तस्माद्भ्रातृसूनुर्महानृपः....॥28॥
(पाणाहेड़ा का शिलालेख)

तस्यान्वये करिकरोद्धुरवा (बा) हुदण्डः ।
श्रीकंकदेव इति लब्ध (ब्ध) जयो व (ब) भूव....॥17॥
आरूढो गजपृष्ठमद्भुतस (श) रासारै रणे सर्व्वतः ।
कर्ण्णाटाधिपतेर्व्व (र्ब्ब) लं विदलयंस्तन्नर्म्मदायास्तटे ।
श्री श्री हर्षनृपस्य मालवपतेः कृत्वा तथारिक्षयं ।
यः स्वर्ग्गं सुभटो ययौ सुरवधूनेत्रोत्पलैरर्च्चितः....॥19॥
(वि. सं. 1136 की अर्थूणा गाँव की प्रशस्ति)

यः श्रीखोट्टिकदेवदत्तसमरः श्रीसीयकार्थे कृती ।
रेवायाः खलिघट्टनामनि तटे युध्वा (द्ध्वा) प्रतस्थे दिवम् ॥29॥
(पाणाहेड़ा के लेख की छाप से)

(3) विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि (1029) ।
मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडिम्मि ॥
(धनपाल; पाइअलच्छीनाममाला (भावनगर संस्करण), पृष्ठ 45)

(4) कीर्तिषु चाहमान महतां वंशोद्भवालभ्यते ।
राजश्रीः सहजेव येने सहज श्री मन्यतिः स्वामिना ॥32॥
(पाराहेड़ा के शिलालेख की छाप से)

नष्ट-भ्रष्ट काल

पाराहेड़ा शिलालेख (पाये गये शिला लेख से)
ॐ ॐ गणपतेय नमः
....

आसी....................चौलुक्य वंशोद्भवो
राजा कर्ण्णनरेश्वरो हृतरिपुर्व्वैख्यातकीर्तिस्ततः ॥
तत्सूनुर्जयसिंहदेवनृपतिः श्री सिद्धराजाभिधः
......................यस्य..........................पः

नरवर्म, (कृतोऽर्म) परमर्दि येन मर्दितः
....
सिद्धपेन गणनाथ मन्दिरे कारितं हि..........मनोहर ।

नोटः—

अर्थूना चामुण्डराज मन्दिर का शिलालेख ।।
चारमुण्डराज के वंशज का वर्णन, जो वर्तमान में राजपूताना म्यूजियम अजमेर में विद्यमान है ।

।। ऊँ नमः शिवाय ।।

चुंडायां कुसुमश्रियं श्रवणयोः कुन्दावतंसस्थितिः ।।
..........चन्द्रकलां च कुन्तलतटे, हासद्युति नाधरे ।।
कण्ठे हारशुचि शिरः..........चन्द्रप्रभालंकृतिः ।
पार्वत्या विदधाति नूतन-रते पायेत् स वः शंकरः ।।1।।
अस्ति प्रोत्तुङ्ग-शैलेन्द्रः, प्रख्यातोऽर्बुदसंज्ञया ।
......................तस्य न प्रतिभां भुवि ।।2।।
तपः कृतवतस्तस्य, वशिष्ठस्य महामुनेः ।
....।।3।।
...................हरणदेनो ज्वलत्कोपानलो मुनिः ।
चरुश्रुवं जुहावासौ समन्तादाहुति क्षणात् ।।4।।
ततः प्रचण्डकोदण्ड...............रद्भुतविक्रमः ।
निर्गतः पुरुषः कश्चिन्तूत्नः कोप इवास्यतः ।।5।।
पराशारय पुत्रत्वं लब्धाज्ञः इति स मुनिः ।
...............ल शीघ्रं..........मुद्भर प्रजां ।।6।।
तस्मादनुक्रमवशात् परमारवंशः,
पीयूष पुञ्ज इव चन्द्रमसः प्रवृद्धः ।
.........................नाभिरामः ।
श्री मण्डनः क्षितितैल प्रथितो नरेन्द्रः ।।7।।
मुहूर्तमपि यं मुक्त्वा श्रियं नान्यत्र सं.......।
...............लक्ष्मीवक्षस्थले स्थिरा ।।8।।
श्रमादरेण क्षारेण विदार्य रिपु सत्तमान् ।
पद्मिनीव निजाल.......................।।9।।
श्रीमच्चामुण्ड राजोऽस्य...............प्रवरः सुतः ।
विमन्थनरतो राज्ञां वैरिदारणकेशरी ।।10।।

नोटः—यह बाँसवाड़ा के इतिहास से टूटे-फूटे शिलालेखों के श्लोकों का वर्णन है ।
परमारों की पराजय संवत् 1132 सन् 1175 के लगभग हुई ।
परमारों की बागड़ से राज्य समाप्ति सं. 1307 में ।

आकाश दर्शन

अर्थूणा तोरण स्तम्भ

कमल वाहिनी अप्सरा

नन्दी आसनस्थ अवस्था में

पालीघाट शिवलिंग
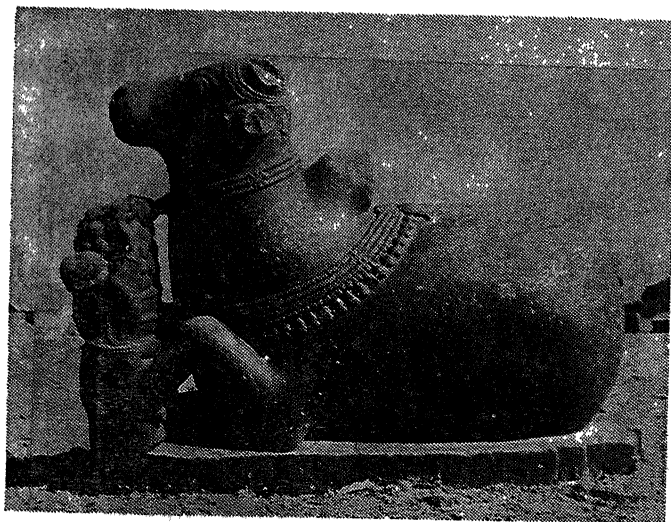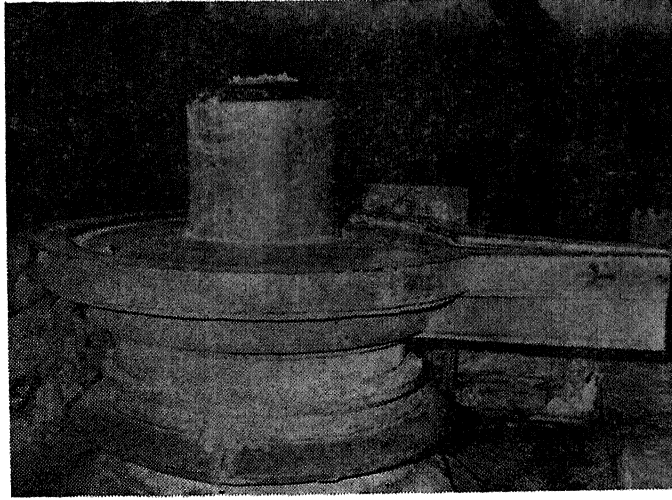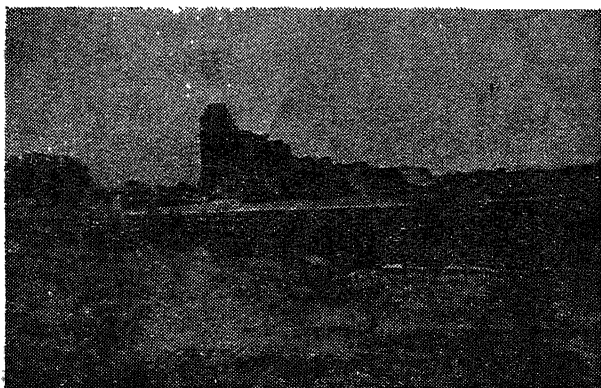
उत्खनन से प्राप्त खण्डहर

(प्लेटफार्म लम्बाई 42 मी. 30 से. मी. तथा चौडाई 32 मी. 50 से. मी. तथा भूमि की सतह से प्लेटफार्म की ऊँचाई 3½ मी. है)

नीलकण्ठ महादेव मन्दिर